मन नहीं टिकता क्या करें

लेखक

आचार्य श्री अभय देव विद्यालंकार

(वैदिक विनय नामक ग्रन्थ के प्रख्यात लेखक)

॥ ओ३म्॥

मन नहीं टिकता, क्या करें?

इस जिज्ञासा पर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को जो भिन्न-भिन्न उत्तर समय-समय पर चिट्ठी पत्री में या बातचीत में दिये जाते रहे हैं उन्हें नीचे कुछ एक ढंग से संकलित कर दिया जा रहा है।

(१)

तुम कहते हो कि संध्या में, ध्यान में मन नहीं टिकता, पर यह बताओ टिकता कब है? जब बाकी सब समय, २२, २३ या साढ़े तेईस घण्टे तुम मन को छुट्टी दिये रखते हो, वह जो चाहे करता रहे, जो चाहे सोचता रहे, तो ध्यान के एक आधे घण्टे वह बिल्कुल टिक जाय, निश्चल हो जाय, यह कैसे हो सकता है? मन पर ऐसी हुकूमत तो नहीं चल सकती। दिन-रात, सोते-जागते, चलते-फिरते, तुम उसे चंचल रहने की आदत डालते हो, चंचल रहना सिखाते हो, पर ध्यान के थोड़े से समय के लिये तुम चाहते हो, कि वह

अपनी इस सब आदत को बिल्कुल छोड़ कर मानो रूपांतरित होकर, निश्चल हो जाय। इसके लिये तो तुम्हें दिन भर हर समय ही मन पर कुछ अंकुश-सा रखना सीखना होगा। हर समय मन को कुछ न कुछ वश में रखने का अभ्यास करना होगा।

ध्यान-भजन के समय को जीवन के बाकी सब भाग से काट कर जुदा नहीं रखा जा सकता। ऐसा करने में यदि सफल हो जाओगे तो भी उससे काम नहीं चलेगा। जीवन तो असल में अविभाज्य है। जीवन के एक भाग का दूसरे भाग पर प्रभाव पड़ेगा ही और तुम्हारा मन तो ध्यान के समय भी वही, एक वही है, जो कि दिन भर अन्य नाना प्रकार के व्यापार में संलग्न रहता है।

मतलब यह कि तुम्हें अपने मन को व्यापक रूप में भी साधना होगा, इससे पहले कि तुम केवल ध्यान के समय के लिये ही उसके सधे हुए रहने की आशा करो—इससे पहिले कि तुम यह आशा करो कि तुम्हारा मन ध्यान के समय एक बिल्कुल अनुशासित बालक की तरह तुम्हारी आज्ञा-पालन करे। तुम्हारी मन की साधना जीवन व्यापी होनी चाहिये, तभी तुम्हें संध्या के

समय मन की विशेष कठिनाई नहीं आवे यह सम्भव होगा।

इसके लिये एक सहज अभ्यास यह है कि तुम जब जो काम करो तब उसी काम में मन को पूरी तरह लगाओ। केवल संध्या या ध्यान के कार्य में ही नहीं, किन्तु अपने प्रत्येक कार्य में ही मन की एकाग्रता रखो। जब जिस काम में लगे हो तब उसे ही पूरी एकाग्रता, तल्लीनता एवं समग्रता से करो। जब दूसरे कार्य में लगो तो उधर मन लगा दो। इस तरह शारीरिक कार्यों में या पढ़ने-लिखने जैसे मानसिक कार्यों में, सब में मन की एकाग्रता का अभ्यास होता रहे ऐसा यत्न करो।

(२)

तुम मन को रोकना क्यों चाहते हो? मन को रोक रखने से क्या फायदा होगा? यूं ही दूसरों की नकल नहीं करनी चाहिये। और कोई मन को रोकने का अभ्यास करते हैं इसलिये हम भी करें ऐसी कुछ बात नहीं होनी चाहिये।

तुम स्वयं सोचो तुम्हारा उद्देश्य, अभिमत या मतलब क्या है? फिर उसका उपाय करो। तुम्हें मेरी सलाह यह

है कि तुम मन को रोकने, एकाग्र करने के चक्कर में अभी नहीं पड़ो। तुम तो पहिले ठीक तरह सोचना सीखो। मन की क्रिया को बन्द कर देना, मन को मार देना, मन को जबरदस्ती दबा देना उन्नति का तरीका नहीं है। 'मूढ़', जड़ मन की अपेक्षा तो चंचल, 'क्षिप्त' मन ही अच्छा है, तुम अभी मन से ठीक प्रकार काम लिया जाय ऐसा यत्न करो।

जो सोचो उसे ठीक प्रकार, सीधे तौर पर, सच्चे तौर पर सोचो। गड़बड़ ऊटपटांग या कुटिलता के साथ, या निरर्थक असंगत तरीके से मत सोचो। ऐसी साधना करना भी बहुत बड़ी बात है। तुम इस तरफ ध्यान दो।

(३)

जो कोई आता है यही पूछता है कि मन को एकाग्र करने की विधि बताइये। यह भी एक फैशन-सा हो गया दीखता है कि किसी साधु-सन्त योगाभ्यासी कहलाने वाले के पास जाया जाय तो उससे विनय-भाव से कुछ ऐसा प्रश्न किया जाय–

'भगवन्! कृपा करके बतलाइये मन को कैसे एकाग्र

किया जाय? मन तो रुकता नहीं, बड़ा चंचल है...।'

मैं आपको इस विषय में कोई नई बात नहीं बता सकता। सच तो यह है कि इस विषय में पूछने की इतनी बात नहीं है जितनी करने की। आपने बहुत ग्रन्थ पढ़े हैं, आप तो जानते ही हैं कि आज से शायद पांच हजार वर्ष पूर्व मन के विषय में अर्जुन ने श्रीकृष्ण भगवान से जो प्रश्न किया था, और उसका जो उत्तर पाया था, मेरी सम्मति में वह प्रश्न और वह उत्तर आज भी उसी तरह सत्य है। उसमें कुछ बढ़ाने-घटाने की आवश्यकता नहीं है।

अर्जुन ने कितने सच्चे भाव में कितनी बलवती भाषा में जिज्ञासा की थी–"मन बड़ा चंचल, बेकाबू, बड़ा क्षोभपूर्ण है, हावी हो जाने वाला, बड़ा जबरदस्त दृढ़, हठी है। मन को रोकना तो वायु रोक रखने जैसा अशक्य-सा काम दीखता है"। पर श्री कृष्ण भगवान ने धैर्य देते हुए उपाय बताया–'बेशक हे महाबाहु! मन बड़ा दुर्निग्रह और बड़ा चंचल है, तो भी, हे कौन्तेय! अभ्यास और वैराग्य से वह काबू में आ जाता है।' तो क्या आप 'अभ्यास और वैराग्य' के उपाय से अनभिज्ञ हैं? चित्तवृति-निरोध के योग का प्रतिपादन करते हुये

सुप्रसिद्ध योग दर्शन का बताया उपाय भी तो यही है। आप जानते हैं–

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित वृत्ति का निरोध होता है। इन दो उपायों की व्याख्या करते हुए भाष्यकार व्यास जी ने बड़ा अच्छा निर्देश किया है कि अभ्यास और वैराग्य इन दोनों द्वारा मिलकर चित वृत्ति की दिशा पलटी जाती है।

यदि एक नदी के प्रवाह की दिशा पलटनी हो तो उसके दो उपाय है, एक तो जिधर ले जाना है उस तरफ खं द दिया जाय, खोल दिया जाय और साथ ही दूसरे जिधर से रोकना हो उधर बांध-बांध दिया जाय, सो अभ्यास द्वारा पहिला कार्य होता है और वैराग्य द्वारा दूसरा।

बस! इन दोनों चीजों को करने की जरूरत है। लोग करते नहीं हैं, पूछते रहते हैं। लोग यह सोचते हैं कोई जादू हो जाय तो अच्छा है, यत्न नहीं करना चाहते। या थोड़ा-सा यत्न करके ही घबड़ा जाते हैं। मेरी समझ में तो इस कठिन कार्य में, इस यत्न में १०-२० वर्ष भी

लग जाय तो भी कुछ बात नहीं। पर करने की बात यही है, उपाय यही है। यह निश्चित समझना चाहिये। जितना अभ्यास किया जायेगा, बार-बार मन को एकाग्र करने का सतत यत्न किया जायेगा और जितनी ही बाह्य विषयों में विरागता, अनासक्ति, समचित्तता होती जायेगी उतना-उतना चित्तवृत्ति-निरोध, मन की अचंचलता होती जायेगी। इसलिये और किसी छोटे रास्ते शार्ट-कट की खोज में न पड़, इसी राज मार्ग को अपनाना चाहिए। अन्त में यही छोटा मार्ग भी साबित होगा। अभ्यास (बार-बार यत्न करना) और वैराग्य (वस्तुओं में अराग, अनासक्ति, समचित्तता)।

(४)

तुम कहते हो कि मन नहीं रुकता, पर तुम ज़रा यह तो देखो कि मन कहाँ जाता है। इसे 'देखने' में ही जादू है। जैसे एक प्रवीण सपेरा सांप के ऊपर दृष्टि डालकर सांप को वश में कर लेता है वैसे ही मन के द्रष्टा (देखने वाला) बनते ही मन के काबू करने की कुञ्जी हाथ आ जाती है। बस, मन को देखो, देखते रहो, लगातार दृष्टि के नीचे रखो। फिर मन कहाँ जायेगा,

तुमसे बिना पूछे, बिना आज्ञा लिये कहीं नहीं जा सकता। मैंने ठीक तरकीब बताई है कि नहीं? बात कहने में तो मैंने बता दी है, पर यह भी आसान काम नहीं है। मन का द्रष्टा बना रहना भी बहुत कठिन है। पर यह उपाय बहुत उत्कृष्ट है। आशा है तुम्हें यह जंचा होगा।

इसके लिये तुम्हें अपने मन के साथ बहना छोड़ना होगा। मन के ऊपर होकर, मन के बहने को, मन की गति को देखना होगा, देखने वाला बनना होगा। हम प्रायः मन के साथ एकाकार हुए रहते हैं, अतएव मन के साथ बहते, मन के साथ लुढ़कते-पुढ़कते घिसटते फिरते रहते हैं। मन से जुदा होकर मन के ऊपर होकर नहीं बैठते। इसी लिये हम मन के द्रष्टा या साक्षी नहीं हो पाते।

यह मन के द्रष्टा होने का विचार तुम्हें अच्छा लगा हो तो ऐसा करके देखो। द्रष्टा होते ही मन की गुलामी से छुटकारा दीखने लगेगा और मन के स्वामी होने का रास्ता मिल जायेगा। अभी तक तो हम मन के गुलाम हैं, दास हैं। मन से बंधे हुए इधर-उधर बेबस फिरते हैं, मारे-मारे भटकते हैं। कितनी भारी गुलामी की अवस्था है।

(५)

मन के विषय में मेरे एक गुरु अच्युत मुनि जी ने एक बार सुन्दर बात कही थी, आपको तो वह सुनाना चाहता हूँ। अच्युत मुनि जी कहने लगे 'देखो, मन नपुंसक होता है न? तो वह पुरुष के सामने कैसे ठहर सकता है'? सो अपने पुरुषत्व को अनुभव कीजिये। उसके सामने बिचारा मन क्या कर सकता है। मन वशवर्ती हो जायेगा।

आप वस्तुतः पुरुष हो जाइये तो मन अपनी असली अनुचर य विधेय स्थिति में आ जायेगा।

(६)

आप जैसे लोगों को मन की चंचलता रोकने के लिये संकल्प-बल का प्रयोग करना चाहिये, आप मन को रोकने का उपाय, विधि कोई खास ढंग पूछते हैं। पर मैं कहता हूँ कि आप संकल्प कीजिये, दृढ़ संकल्प के साथ ध्यान में बैठिये कि अब मन को इधर-उधर भटकने नहीं देना है, अमुक स्थान पर या विषय पर एकाग्र करना है। सो उसका अवश्य फायदा होगा।

जितना ही दृढ़ संकल्प होगा, उतना ही आप देखेंगे कि आपको सफलता मिलेगी।

मैं तो मन को रोकने का स्वभावतया यही उपाय बरतता हूँ और इससे मुझे सफलता भी होती है। जिस दिन कोई खास कारण मन की चंचलता का हुआ होता है उस दिन विशेष रूप से दृढ़ संकल्प करके बैठने की ज़रूरत होती है।

पूरी और स्थायी सफलता को बेशक धीरे-धीरे और चिरकाल में होगी। पर संकल्प-बल उसमें सदा लगातार सहायक होगा।

जप वस्तुतः एक बड़ा अच्छा उपाय है। जप को 'परम तप' कहा गया है। गीता में 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' कहकर जप की महिमा गाई गयी है। जप की विशेषता यह है कि इसमें एक प्रकार से मन की चंचलता को चरितार्थ करते हुए उसे एक सूत्रता में एक धारा में रखा जाता है। मन्त्र के या नाम के बार-बार मानसिक उच्चारण में जो पुनः-पुनः फिर-फिर उसे ही दोहराया जाता है, उससे प्रत्येक जप की समाप्ति पर ठहरना भी हो जाता है, कुछ परिवर्तन सा भी हो जाता है जो कि मन के चंचल स्वभाव के अनुकूल है, पर फिर उसे ही

पकड़ लेने से एक धारा भी बनी रहती है जो कि एकाग्रता के लिये अभीष्ट है। पर स्वाभाविक जप वह है जबकि आत्मा जपनीय शब्द को, उसके अर्थ के आनन्द को पाने के कारण बार-बार दोहराये चली जाती है, उसे छोड़ने को जी ही नहीं चाहता। तब जप करना है इस लिये जप नहीं किया जाता है किन्तु उसे बार-बार दोहराये बिना रहा ही नहीं जाता, जितना ही दोहराते हैं उतना ही रस आता है। इसलिये स्वयमेव उसका दोहराना होता है, जप होता है।

सो आप खूब प्रेम से जप कीजिये। आप जो कहते हैं कि उसके अर्थ में, भावना में लगातार मन नहीं रहता, कभी इधर-उधर की बातें भी मन सोचने लग जाता है। माला हाथ में घूमती है, पर मन भावना को छोड़कर कहीं और ही चला गया होता है, सो यह प्रेम की कमी है, या संकल्प की कमी है।

जब मैं माला से जप किया करता था तब मुझे याद है, एक बार मैंने यह नियम किया था कि जिस जप के साथ भावना (अर्थ विचार) उखड़ जाती है उसे मैं गिनता नहीं था। उस पर माला के मनके को आगे नहीं चलाता था। जो जप भावना से होता है उसी को गिनता

था, उसी के साथ अगला मनका पकड़ता था, नहीं तो नहीं। इससे भावना को लगाने के लिए बाधित-सा होना पड़ता था, नहीं तो जप में बहुत देर लग जायेगी इसका डर रहता था, और वह भय तन्मयता के लिये प्रेरित करता था।

आप भी ऐसा करके देखें। ऐसा करने से 'हाथ में माला फिरे पर अर्थ भावना न हो' इस मिथ्या अवस्था में पड़ने से अवश्य रुकावट होगी।

माला से गिन कर या समय द्वारा माप कर (जैसे आधा घण्टा ४५, मिनट) जप करना इसीलिये लाभदायक है क्योंकि ऐसा करने से उतना करने की मर्यादा पूरी करने की इच्छा शक्ति के रूप में सहायक हो जाती है। बहुतों के लिये ऐसा करना बहुत लाभदायक होता है पर जब स्वाभाविक रूप धारण कर लेता है तब ऐसे किसी नियम में बंधने की जरूरत नहीं रहती।

(८)

एक चीज है 'शान्त वाहिता चितस्य' मन की शांत वाहिता। मन शांत भाव से बहे, गति करे। तुम इसकी तरफ ध्यान दो। मन को निग्रह कर लो, उसमें कोई गति

ही न हो, इसकी अपेक्षा तुम ऐसा यत्न करो कि तुम्हारा मन शान्तवाही हो। मन चले, सोचे, विचारे, एक बात से दूसरी बात पर, एक विषय से दूसरे विषय पर जावे, पर वह शान्त भाव से अचञ्चल गति से जावे। जैसे कोई लोग हड़बड़ाते हुए घबराते हुए या शंका-ग्रस्त हो पैर बेढंगे तौर पर रखते हुए या लड़खड़ाते हुए चलते हैं वैसे तुम्हारा मन गति न करे। किन्तु जैसे कोई महापुरुष शान्त, धीर, गम्भीर गति से निःशंक होकर चलता है उस तरह तुम्हारे मन की गति हो।

(९)

तुम कहते हो कि कभी-कभी तो ध्यान में तुम्हारा मन बड़ा अच्छा लगता है और कभी बड़ी कोशिश करने पर भी नहीं लगता, तुम तंग हो जाते हो। पर इस अवस्था में घबराना नहीं चाहिये। ऐसा सभी को होता है। एक सार अवस्था सदा नहीं हुआ करती है, और किसी की भी नहीं हुआ करती। कभी अच्छा ध्यान लगना और कभी न लगना, जब जब ऐसा होता है तब देखना चाहिये कि उसका कारण क्या था। उसका कुछ कारण अवश्य होता है, चाहे कारण हमारी समझ में

आवे या न आवे।

यदि कारण समझ में आवे तो (पहली अवस्था में) उसे बढ़ाने का या (दूसरी अवस्था में) उसे दूर करने का यत्न करना चाहिये। उदाहरणार्थ कभी किसी सन्त पुरुष के सम्पर्क से या उत्कृष्ट कोटि की पुस्तक पढ़ने से या प्रकट या अप्रकट रूप से, किसी आनन्द, सन्तोष या छुटकारे की अवस्था के अनुभव आदि के कारण मन में सात्विक अवस्था उत्पन्न हो जाती है तो उस दिन मन अपने आप सरलता से लगता है। इसके विपरीत कभी कहीं से राजसिक उत्तेजनामय वातावरण का सम्पर्क मिलने, वैसे पुरुषों या वैसे साहित्य से प्रभावित होने से या क्षोभ, उद्विग्नता, भय, क्लेश की किन्हीं अवस्थाओं के स्थूल या सूक्ष्म प्रभाव के कारण मन ऐसा विक्षुब्ध होता है कि रोके नहीं रुकता। पर यदि ऐसा कोई कारण समझ में न आवे तो भी कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिये। इतना समझ लेना काफी है कि मन की सात्विक, राजस, तामस अवस्थाएं होती रहती हैं इसलिये इन बातों से घबराना नहीं चाहिये।

योग-दर्शन में मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध, पांच अवस्थायें मन की बताई हैं। उसमें पहिली तीन अयोग की अवस्थायें हैं और पिछली दो (अर्थात् एकाग्र और निरुद्ध) योग की अवस्थायें हैं। पहली तीन अर्थात् मूढ़, क्षिप्त, और विक्षिप्त को सामान्यतया तामसिक, राजसिक तथा सत्वोन्मुख राजस अवस्था कहा जा सकता है। पर तमोगुण, रजोगुण कुछ न कुछ आगे भी तो रहते ही हैं।

जिनका मन एकाग्रता का अभ्यासी हो गया है। उनका भी कभी मन अपेक्षया भारी, बोझल, दबा हुआ, सोया हुआ, अप्रवृत्तियुक्त अर्थात् मूढ़ होता है, तो कभी अपेक्षतया विशेष चञ्चल, अधीर, अस्थिर, उभड़ता या उड़ता हुआ-सा अर्थात् क्षिप्त या फिर विक्षिप्त होता है। सो इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। क्योंकि प्रतिदिन की मानसिक अवस्था में ऐसा तामस, राजस, सात्विक प्रकार का अपेक्षाकृत भेद होते हुए भी समग्र रूप से मन की अवस्था में उन्नति हो ही रही होती है। उसे देखना चाहिए। और उस पर विशेष दृष्टि रखते हुए आगे बढ़ते जाना चाहिए।

(१०)

तुम ठीक कहते हो कि जिस दिन कोई खास बात

हुई होती है, कोई हर्ष हुआ होता है या कोई धक्का लगा होता है या किसी अन्य कारण से किसी बात ने मन को घेर रक्खा होता है उस दिन मन खासतौर पर उसी बात पर बार-बार चला जाता है और उस दिन ध्यान नहीं हो पाता है। यह अनुभव ठीक है। पर इसके आगे मेरा अनुभव यह भी है कि यदि आदमी ध्यान देवे तो उस दिन मन को रोकना आसान भी अधिक हो जाता है। क्योंकि मन उस दिन उसी विषय पर ही जाता है, भिन्न-भिन्न अन्य विषयों पर नहीं। सो उस दिन हम उसके लिए स्वभावतः विशेष जागरूक हो सकते हैं या हो जाते हैं वह विचार ज्यों ही आता है, आने लगता है, तुरन्त पता लग जाता है, और उसे रोक दिया जाता है। पर जिस दिन कोई ऐसी खास बात न हो तब तो कभी कोई कहीं का विचार आ जाता है और हमें पता भी नहीं रहता कि वह कब आ गया और हम उसके साथ बह जाते हैं।

जैसे जब किसी खास आक्रमण का अन्देशा होता है तब उस विशेष प्रकार के आक्रमण से बचना भी आसान होता है क्योंकि उसके प्रतिविधान के लिए हम तैयार होते हैं पर जब कोई अचानक ही जिसकी

आशंका न हो, आक्रमण हो जाय तो उसे रोकना मुश्किल होता है। वैसी ही यह बात है।

(११)

कइयों को तो यह भी सलाह देनी होती है कि वे मन के विचारों को रोकें नहीं, आने देवें। देखें वह कब तक आते हैं? ऐसा सोचकर छुट्टी दे देवें, विचारों को खुले आने देवें। ऐसा करने से कुछ समय बाद उन्हें विचारों को आने देना बड़ा बुरा लगने लगता है, वे विचारों के ऐसे निरन्तर आक्रमण से तंग आ जाते हैं और तब उनके लिये मन की एकाग्रता करना सरल हो जाता है। वे रोकने का ही यत्न करते रहें तो वे कभी सफल न हों। उनकी मन की अवस्था ही ऐसी हो चुकी होती है।

पर तुम्हारी अवस्था ऐसी लगती है कि तुम यह देखो कि विचार आते कहाँ से हैं, अपने शान्त खुले मन को मानो शान्ति को भंग करते हुए किसी विचार का आगमन कहाँ से होता है? उस पर ध्यान दो। कुछ समय बाद सचमुच अनुभव होने लगेगा कि विचार अमुक दिशा से, अमुक स्थान से आया या आने वाला है। फिर

जब कोई विचार आने को होगा तभी पता लग जायेगा और उसे आने से पहले ही रोक दिया जा सकेगा। इस प्रकार क्रमशः तुम्हारा मन निर्विचार, विचारों से अनाक्रान्त, शान्त अवस्था को प्राप्त हो जायेगा।

कई लोगों को पहले यह बात समझ में नहीं आती कि विचार कहीं बाहर से आते हैं। साधारणतया यही समझा जाता है कि विचार अपने मन में से ही उत्पन्न होते, पैदा होते हैं। विचार हमारे अन्दर मन की उपज नहीं हैं, किन्तु वे बाहर से विचार-लहरों के रूप में आकर हमारे मन में घुसते हैं यह समझ लेना ही विचारों के आक्रमणों को रोकने में बड़ा सहायक होता है। पर इसका कुछ अनुभव हो जाने पर तो काम बहुत सहज हो जाता है।

(१२)

आपकी कठिनाई का इलाज मुझे यह लगता है कि आप अन्दर गहराई में जाने का यत्न करें। मन के ऊपरी तल में नहीं रहें किन्तु अन्दर गहराई में जावें। आप जो यूं ही यान्त्रिक तौर से (Mechanically) आते रहने वाले विचारों के कारण तंग हैं उसके लिये गहरा गोता

लगाइये। गहरी अन्तर्मुखता अपेक्षित है।

इन यूं ही परेशान करने वाले निरर्थक से विचारों का मन के ऊपरीतल पर ही प्रभाव होता है, गहराई में नहीं। असल में तो हरएक को अपने अन्दर गहराई में एक केन्द्र को खोज लेना है। जब तक वह केन्द्र नहीं मिल जाता, वहाँ स्थिति नहीं हो जाती तब तक ही ऐसी परेशानियाँ रहती हैं।

(१३)

हां! आपको मन को खाली करने का मन को एक स्थान विशेष पर केन्द्रित करने आदि का अभ्यास करने की जरूरत नहीं। यह विधि आपके लिये कठिन होगी। विशेष सफलतादायक भी नहीं होगी। आप तो अपनी भक्ति के द्वारा, भगवान् के प्रति आपके हृदय में जो प्रेम भरा है उसके द्वारा ही चलिये। उसी का सहारा लीजिये। मगन होकर भक्ति के गीत गाना या स्वयं कविता करना, इसे चलने दीजिये। इससे आपके हृत्पुरुष (अन्तरात्मा) का जो विकास होगा उसका प्रभाव आपके मन पर भी स्वयं पड़ेगा।

अन्तरात्मा अपनी शान्ति का दबाव आपके मन पर

डालेगी। और शान्ति का दबाव आपके मन पर डालेगी। और उससे आपके मन की चंचलता स्वभावतः दूर होती जायेगी।

(१४)

मेरा मतलब यह नहीं कि दूसरा आदमी आपके मन को अचंचल व एकाग्र करने में कुछ भी सहायता नहीं कर सकता या मन को रोकने की कोई खास विधियां या उपाय नहीं हैं। पर मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूँ कि दूसरे की पहुँचायी सहायता सहायता ही होती है, आखिर में हमें स्वयं ही और अपने ही मन को साधना होगा। इसी तरह मन को रोकने की विशेष विधियाँ और उपाय होते हुए भी उनका करना, उनका अभ्यास करना तो करने वाले को ही करना होता है और यत्नपूर्वक करना होता है।

एक गुरु बेशक अपने संकल्प द्वारा भी मनो-निरोध में सहायता कर सकता है और बहुधा करता भी है। उसकी मनो-निरोध की जो खास विधि होती है प्रायः उसी के द्वारा वह अपने शिष्य को आसानी से एकाग्रता में पहुँचा सकता है। इसीलिये वह वही विधि प्रायः

सबको बताता है। पर उस विधि से सबको सफलता नहीं होती। उसका कारण प्रायः यही होता है कि वैसे शिक्षार्थी की प्रकृति के वह (विधि) अनुकूल नहीं होती।

योग-दर्शन में मनो-निरोध की जो विधियाँ लिखी हैं वे सब सही हैं। वे सब अनुभूत हैं। स्पष्ट रूप से ही सफलतादायक हैं। पर वहाँ भी कई उपाय इसलिये कहे हैं कि वे भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोगों के लिये विशेषतया उपयुक्त होते हैं। वहाँ अन्त में यह भी कह दिया है कि–'यथाभिमत ध्यानाद्वा' अर्थात् जो रुचे वही ध्यान लगाओ, उसी से एकाग्रता की अवस्था को पा जाओगे।

साधारणतया नाद या प्रकाश में पहुँचा देना मन की तल्लीनता का बड़ा अच्छा साधन है। कईयों के लिये नाद का स्फुटित होना अनुकूल होता है, तो दूसरों के लिये प्रकाश-दर्शन आसानी से खुल जाता है। या एक गुरु के लिये नाद कराना, दूसरे के लिये प्रकाश कराना आसान होता है। पर ये दोनों ही बड़े अच्छे उपाय हैं।

नाद के विषय में कहा है–'न नादसदृशोलयः' नाद में मन बड़ी अच्छी तरह तल्लीन हो जाता है। कानों में जो मधुर बाजों के बजने की-सी आवाज निरन्तर होने

लगती है उसे सुनना उसमें मन को लीन कर देना सुगम होता है। इसी तरह प्रकाश हो जाने पर चन्द्र सूर्य तारे तथा अन्य बढ़ते हुए प्रकाश में जो कि सामने दिखाई देने लगते हैं मन को एकाग्र कर देना सुगम होता है।

योग दर्शन की विशोका प्रवृत्ति का वर्णन करते हुए प्रकाश के 'सूर्य चन्द्र ग्रह तारा मणि प्रभा' रूप में प्रकट होने का वर्णन है। इसी तरह एक अनुभूति होती है। जिसमें 'निस्तरंग महोदधि कल्पं' अर्थात् ऐसा बड़ा भारी विस्तृत समुद्र है जिसमें कोई तरंग नहीं उठती, शान्त, अचल है ऐसा अनुभव होता है। इसे सम्भवतः ज्योतिष्मती प्रवृत्ति कहा गया है। इस अनुभूति से भी मन स्थिरता को प्राप्त होता है।

चित्त की निर्मलता के लिये, प्रसाद के लिये सुख में मैत्री, दुःख में करुणा, पुण्य में मुदिता और अपुण्य में उपेक्षा का अभ्यास करने की विधि बताई गई है। भाव प्रधान लोगों के लिये यह अभ्यास बड़ा अच्छा है। इससे प्राण (चित्त) शुद्ध होता है और उससे एकग्रता सुगम हो जाती है।

भक्तों के लिये 'ईश्वर प्रणिधान' का उपाय भी योग दर्शन में बताया गया है—'प्रणिधानात् भक्ति-विशेषात्

आवर्जितः ईश्वरस्तमनुगृह्णाति अभिध्यानमात्रेण' अर्थात् प्रणिधान (समर्पण) रूपी भक्ति विशेष से सम्मुखीकृत किया गया परमेश्वर उसे अभिध्यान मात्र से अनुगृहीत कर देता है। सो उसकी कृपा से भी शीघ्र समाधि अवस्था प्राप्त हो जाती है।

किसी वीतराग महात्मा का, जिसमें भी हमारी सच्ची भक्ति हो, ध्यान करने से भी मन को शान्त एकाग्रता प्राप्त होती है। बहुत से लोगों के लिये ऐसा करना ही सहज होता है। किसी अन्दर या बाहर के केन्द्र पर या वस्तु या विचार पर ध्यान जमाने की जगह किसी व्यक्ति का ध्यान करना उनके मन के लिये बहुत अनुकूल होता है। सो वे उसी का हृदय में ध्यान कर सफलता प्राप्त करते हैं।

ऐसा ध्यान करने में हम उस वीतराग-पुरुष की मानिसक चेतना के साथ एक प्रकार का तादात्म्य स्थापित करते हैं और उसी के कारण हमारा मन उस प्रभाव से युक्त होकर स्थिर हो जाता है। जो महापुरुष विद्यमान नहीं हैं उनकी स्मृति द्वारा भी ऐसा ध्यान किया जा सकता है।

बुद्ध भगवान की ध्यानस्थ मूर्त्ति बौद्ध काल के

स्तूपों विहारों में इस कार्य में सफलता पूर्वक उपयुक्त की जाती थी। आज भी बुद्ध भगवान की ऐसी चित्रित मूर्त्तियाँ देखने मात्र से शान्ति का वायुमण्डल उत्पन्न करती हैं, विहारों, गुफाओं, मन्दिरों की चित्रकला मौलिक रूप से ऐसे ही उच्च भावों का वायुमण्डल उत्पन्न करने के उद्देश्य से की गई थी या की जाती थी। मन की एकाग्रता की दृष्टि से इनका उपयोग यही है कि अन्य तरीकों के बीच एक यह भी तरीका है जिससे कि किन्हीं शान्तमना पुरुष की मानसिक चेतना के साथ एकता स्थापित की जाती है, या शान्ति वर्षक चित्रण द्वारा शान्ति पान में सहायता प्राप्त की जाती है, आजकल भी फोटो या आलेखन से वही प्रयोजन पूरा किया जा सकता है।

योग दर्शन में स्वप्न ज्ञान (स्वप्न में हुई किसी सात्विक या दिव्य अनुभूति) का अवलम्बन लेकर तथा निद्राज्ञान (ऐसी सात्विक सुषुप्ति जिसमें मन सर्वथा शान्त प्रसन्न रहा हो) के अवलम्बन द्वारा भी मन को समाहित करने की विधि कही गई है।

इसी तरह भ्रूमध्य, नासिकाग्र, कण्ठ, जिह्वा मूल, सिर, आन्तरिक शरीर के केन्द्र जिन्हें कमल कहते या

चक्र कहते हैं उनमें ध्यान लगाने से मन की एकाग्रता प्राप्त की जाती है। अन्तरात्मा का स्थान हृदय है। सो वहां ध्यान लगाना भी बहुत अच्छा है। प्रत्येक चक्र में लगाने का अपना-अपना विशेष फल है। एवं ध्यान लगाने की विधियाँ तो बहुत हैं, अनगिनत हैं। पर अभ्यासी को किसी अच्छे गुरु की देख-रेख में उसकी बतायी विधि का, और अपनी प्रकृति के अनुकूल विधि का अनुसरण करना चाहिए।

कई लोग आज एक विधि करते हैं तो कल किसी और से दूसरी विधि सुन कर या कहीं से पढ़कर उसे करने लगते हैं और दो एक दिन बाद तीसरी करने लगते हैं। ऐसा करने से कुछ भी नहीं हो पाता 'एक ही साधे सब सधे, सब साधे सब जाय' यह याद रखना चाहिये। अच्छी तरह समझ कर एक विधि को ही अपनाना चाहिये और उसे निरन्तर, श्रद्धापूर्वक, धैर्य के साथ चिरकाल तक करते जाना चाहिये। तभी सफलता मिलती है।

कुछ दिन एक अभ्यास किया, फिर उसमें अश्रद्धा कर ली, या निराश हो या घबराकर उसे त्याग दिया, उसे छोड़कर फिर कुछ अन्य विधि शुरु की या एक

अभ्यास को कभी किया, कभी नहीं किया, किया भी तो पूरे दिल से नहीं किया ये सब चीजें सिद्धि के प्राप्त करने के बिल्कुल प्रतिकूल हैं। सर्वथा ठीक अभ्यास और अपनी प्रकृति के अनुकूल अभ्यास को प्राप्त करके भी यदि उसे ठीक तरह नहीं किया जायेगा तो भोजन हाथ में रहते भी भूखा रहने की बात होगी या 'पानी में मीन प्यासी' की कहावत चरितार्थ होगी। (१) निरन्तरता, (२) श्रद्धा, (३) धैर्य, के साथ चिरकाल सेवन ये योगाभ्यासी के लिये आवश्यकीय गुण हैं।

(१५)

मन क्यों चंचल होता है? यह देखना चाहिये। मन जब भटके तो पता लगाना चाहिये कि वह कहाँ से भटका? इसके लिये अच्छा उपाय यह है कि जब पता लगे कि मन तो भटक गया है तब उलटी दिशा में सोचकर उस स्थान पर आ जाना चाहिये जहाँ से मन भटका था। कुछ समय तक तो मन के भटक जाने पर भी पता ही नहीं होता कि मन भटक गया है, मन अनभीष्ट दिशा में सोचता ही जाता है।

अचानक जब एकाग्रता का हमारा संकल्प हमें

जगा-सा देता है तो याद आता है कि मैं तो एकाग्र हो अमुक ध्यान करने (या अमुक जप करने, अमुक विचार करने या अमुक दिशा में एकतान अभीप्सा करने आदि बैठा था) जागने पर देखना चाहिये कि उस समय मन में क्या विचार आ रहा है, फिर सोचना चाहिये कि मैं इस विचार पर कैसे पहुँचा अर्थात् इस विचार से पहला विचार आया था, पहली विचार-श्रृखंला क्या थी? इस तरह सोचते-सोचते इस विचार को जा पकड़ना चाहिये जिसके द्वारा ध्यान का पहला भंग हुआ था, जिस विचार के द्वारा सबसे पहले मन ध्यान से भटका था। उस प्रारम्भिक विचार पर इस प्रकार विशेष ध्यान देना चाहिये कि वह मन में क्यों आया? उसका कारण जानना चाहिये। उससे मालूम होगा कि मन को ध्यान से हटाने, भटकाने, चंचल करने का क्या कारण हुआ है?

इस खोज में हम प्रायः इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि हमारी कोई आसक्ति, राग, मोह या भय आशंका ही मन की एकतान गति में चुपके से बाधक हो जाती है। यह ज्ञान हमारे मन की शुद्धि में बहुत ही सहायक होगा।

तुम कहते हो कि इस अभ्यास में तो बहुत समय लगता है। सो समय तो देना ही होगा। समय और किस कार्य के लिये है। बहुत-सा समय तो जो तुम निरर्थक बातों में या गपशप में बिताते हो उसमें से बचा सकते हो। पर मैं तो तुम्हें यह भी कहना चाहता हूँ कि चाहे तुम अभी यह अनुभव न करो किन्तु सच्ची बात यह है कि धनोपार्जन के कार्यों की तथा जिन्हें तुम देश-सेवा या समाज-सेवा कहते हो उन कार्यों की अपेक्षा भी यह अपने अन्दर अपने मन का खेल देखना और समझना एक बहुत महत्वपूर्ण कार्य है। यह बहुत बड़ी प्राप्ति का साधन है। यह समय खोना नहीं पर समय द्वारा बहुत उत्कृष्ट उपार्जन करना है।

(१६)

जैसे शारीरिक तौर पर एक स्थिर, अडोल आसन से बैठने की महिमा तुम अनुभव करते हो वैसे ही क्या मानसिक तौर पर भी स्थिर अडोल आसन लगाने की अर्थात् सतत एक भाव में, एक मनःस्थिति में अडोल बने रहने की, बल्कि कार्य करते हुए भी मन की शान्त अनुत्तेजित समस्थिति बनाये रखने की महिमा, शक्ति

और अपेक्षया बहुत ही उत्कृष्ट रूप में तुम अनुभव नहीं कर सकते, कल्पना में नहीं ला सकते।

(१७)

आप मन की स्थिरता के लिये मुझसे सहायता चाहते हैं। पर मैंने भी मन की स्थिरता कहाँ प्राप्त कर ली है? शायद अपेक्षया मेरा मन कुछ स्थिर है, पर मुझे भी अपने तौर पर मन के स्थिर अचञ्चल न होने की वैसी ही शिकायत है जैसे आपको। जैसी स्थिति मैं अब मन की चाहता हूँ वैसी नहीं हो पाती इसकी मुझे भी शिकायत है। पर मैं तो यत्नशील हूँ और आशापूर्ण हूँ, सो आपको भी कहता हूँ कि आप भी यत्न करते जाइये। मन के स्थिर होने, हो सकने में संशय की तो कुछ भी गुञ्जाइश नहीं है।

(१८)

उपाय यह है कि शान्ति की अभीप्सा की जाय। शान्ति मन में अवतरित हो, उतरे यह सच्चे दिल से चाहा जाय।

(१९)

निश्चल-नीरवता का अर्थ (जो कुछ मैं समझा हूँ) है मन की निःशब्द शान्ति, ऐसी शान्ति, निश्चलता जिसमें कोई शोर, शब्द, आवाज भंग नहीं डालती, नहीं डाल सकती। चुप, मौन की शान्ति। अपार, अगाध चुप्पी। मानो चारों तरफ हजारों लाखों मील तक भी किसी शब्द, ध्वनि आहट का अभाव।

गुरूकुल में मैं बच्चों को कहता था कि जब तुम्हें शोर करने को कहें तो तुम ऐसा कोलाहल करो कि कनखल तक तुम्हारी आवाज पहुँचे। पर जब चुप रहने को कहें तो ऐसे चुप होओ कि मानो तुम्हारे आश्रम में कोई जीव है ही नहीं। सुई गिरने की आवाज भी जहाँ खलती है ऐसी (अंग्रेजी में जो Pin drop silence कही जाती है) निःशब्दता ही नहीं किन्तु जहाँ अपने सांस तक की आवाज भी विघ्नकारक प्रतीत होती है ऐसी शान्ति हो। मेरा अभिप्राय है कि इसी दिशा में मन के अन्दर निःशब्दता की स्थायी, गहरी और व्यापक अभीप्सा करते जाओ तो तुम निश्चल नीरवता पर पहुँच जाओगे।

'योग के आधार' नामक पुस्तक में मन की

अचञ्चलता, स्थिरता, शान्ति, निश्चल-नीरवता आदि का भेद स्वयं स्पष्ट करके बताया गया है। अपनी समझ के अनुसार संक्षेप में मैं यों कह सकता हूँ कि अचंचलता में चंचलता का न होना, न रहना मुख्य बात है। स्थिरता में चंचलता के अभाव पर जोर नहीं है किन्तु स्थिर जमे हुए रूप पर है, फिर भी इसमें न हिलने जुलने का भाव है। किन्तु शान्ति में अभावात्मकता बिल्कुल नहीं है।

शान्ति एक वस्तु है, वह किसी का निषेध रूप नहीं है। निश्चल नीरवता का वर्णन मैं ऊपर कर ही चुका हूँ। ऐसे और शब्द भी हो सकते हैं। पर शान्तिद्योतक ये सब शब्द अत्यन्त परस्पर सम्बद्ध हैं।

(२०)

मन की निश्चलता के विषय में दो तीन भावनायें हैं जो मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। आपको भी वे अच्छी लगेंगी या सहायक होंगी यह मैं नहीं कह सकता। तो भी मैं उन्हें लिखता हूँ।

१-गीता का यह वर्णन–

'यथा दीपो निवातस्थो नेगंते सोपमा स्मृतः।'

एक दीप शिखा जिसकी लौ एकसार तनिक भी,

जरा भी, इधर-उधर बिना हिले-जुले निरन्तर जल रही है, स्थिरतया जल रही है–यह कल्पना, यह भावना मुझे बहुत ही हृदयग्राहक लगती है। मन ऐसा निश्चल होकर प्रकाशमान हो ऐसा जी चाहता है। दीप-शिखा ऐसी वस्तु है जो कि ज़रा सी वायु से भी हिल सकती है, पर फिर भी वह जरा भी न हिले।

२- श्री अरविन्द ने 'योग के आधार' नामक पुस्तक के प्रारम्भ में ही एक जगह लिखा है कि जैसे निर्मल शान्त आकाश में कोई पक्षी उड़ते हुवे आते हैं और उसे पार करके चले जाते हैं वैसे विचार हमारे स्थिर मनरूपी विस्तृत आकाश में से निर्लिप्त होकर आयें जायें। यह दृष्टान्त भी मुझे बहुत प्रिय लगता है। इसका ध्यान आते ही मन की स्थिरता का अभीष्ट चित्रण सामने आ जाता है।

३–इसी तरह योग दर्शन पढ़ते हुए जब "निस्तरंगम-होदधिकल्पं" यह पद पढ़ा था तभी से वह भूलता नहीं है। इससे मन की शान्त विशालता का चित्र हृदयपटल पर ऐसे सुन्दरतया अंकित हुआ है कि मिटता ही नहीं, "विशाल समुद्र जिसमें कोई तरंग नहीं उठ रही"।

C